

Jhen~Hkxon~xhrk esa deZ-fl)kUr

1 eukst dqekj 2 Mk0 vejnhi dqekj mik;/k;

1 पी0एन0 कॉलेज परसा, सारण बिहार। 2 नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा विहार

Date of Submission: 30-09-2020

Date of Acceptance: 13-10-2020

प्राचीन वाङ्मय के अध्ययन से कर्म के बारे में पूर्ण जानकारी हो जाती है। कर्म से सम्बन्धित ज्ञान सद्ग्रन्थों से प्राप्त होते हैं। विभिन्न सद्ग्रन्थों की शृंखला में श्रीमद्भगवद्गीता एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें कहा गया है कि मनुष्य को केवल कर्म करने का अधिकार है, कर्मफल निश्चित रूप से मिलना ही मिलना है, इसलिए कर्म करना ही श्रेष्ठ है। कहा गया है :-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥¹

श्रीमद्भगवद्गीता में नियत कर्म की विवेचना हुई है। अथर्ववेद में भी कर्म पर जोर दिया गया है। मानव अगर निष्काम भाव से कर्म साधना करें तो विजय उसके चरण चूमेंगी एवं आत्मोपलब्धि में भी सहायता मिलेगी। इस सन्दर्भ में वर्तमान उक्ति बहुत ही महत्त्वपूर्ण है :-

“ईषावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधःकस्यस्विद्धनम्” ॥²

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि संसार ईश्वर से आवृत है। त्याग से ही मनुष्य को अपना पालन करना चाहिए। किसी के धन की इच्छा नहीं करनी चाहिए। इससे यह अर्थ निकलता है कि इस कार्य के लिए कर्मयोग ही सर्वोत्तम मार्ग है। कर्मों को निर्लिप्त भाव से करना चाहिए। समस्त शास्त्रों में कर्म की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः इसके लिए सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना भी आवश्यक है। कर्मयोग साधनामार्ग के लिए उपयुक्त है ऐसा करने पर मानव अपने लक्ष्य एवं मोक्ष को आसानी से प्राप्त कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में योग की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं उपलब्ध हैं। इसमें से सर्वप्रथम निम्न परिभाषा का आस्वादन किया जा सकता है :-

¹श्रीमद्भगवद्गीता, 2. 47

²यजुर्वेद, 40. 1

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥³

उपर्युक्त प्लोक में कर्म फल की आसक्ति को त्यागने की एवं मन की समता को योग की संज्ञा से अभिहित किया गया है। पुनः यह बतलाया गया है कि बुद्धिमान पुरुष सुकृत एवं दुष्कृत का त्याग कर देता है। इसलिए कर्मयोग ही एक मात्र साधन है। अतः कर्म की कुशलता को ही योग की संज्ञा दी गई। गीता में कहा गया है :-

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥⁴

भगवान का कहना है कि कर्म करने में ही मनुष्य का अधिकार है। कर्मफल पर मनुष्य का कोई भी अधिकार नहीं है। मनुष्य को चाहिए कि कभी अपने को कर्मफल का कारण न माने और ना ही कर्म न करने में अनासक्त हो। लेकिन यहाँ यह प्रश्न होता है कि बिना फल की इच्छा का कर्म का सम्पादन क्यों किया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर निम्न उद्धरणों में प्राप्त हो जाता है :-

“दूरेण ह्यवरं कर्म”⁵
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥⁶

कोई भी मनुष्य क्षण भर भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता है। मनुष्य अपनी प्रकृति से स्वभाव से पैदा होने वाले गुणों द्वारा विवश बना दिया जाता है और कर्म का पालन करता है। इस कारण से भी कर्म की महत्ता प्रतिपादित हो जाती है। अतः कहा गया है कि :-

कर्मणैव ही संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसङ्ग्रहवेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥⁷

लोकसंग्रह की दृष्टि से जनकादि बुद्ध पुरुषों ने कर्म का सम्पादन किया है। इसलिए पूर्णता को प्राप्त करने एवं सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए कर्मयोग में प्रवृत्त होना चाहिए तथा शास्त्रोक्त कर्मों का ही सम्पादन करना चाहिए। शास्त्र ही मार्गदर्शक शक्ति है। शास्त्रों के अनुसार कर्तव्य एवं अकर्तव्य को जानना चाहिए, जिससे मनुष्य अपना उत्थान कर सके। उपर्युक्त बातों की पुष्टि इन उद्धरणों से हो जाती है :-

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥⁸
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।

³श्रीमद्भगवद्गीता, 2. 48

⁴वही, 2, 50

⁵वही, 2. 49

⁶वही, 3. 5

⁷श्रीमद्भगवद्गीता, 3. 20

⁸वही, 16. 24

अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।।⁹

वेद विहित कर्म ही गीता का कर्म है। कर्मफल की अनासक्ति के साथ कर्म को सम्पादित करने को निष्काम अथवा अकर्म कहा गया है जिससे विहित कर्म पृथक हो गया हो और वह षास्त्रों की विषुद्धि श्रेणी में सूचीबद्ध हो वह पापकर्म विकर्म है। इन सभी कर्मों के त्याग करने की बात बतलाई गयी है। जिसकी पुष्टि निम्न उद्धरण से हो जाती है :-

**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।¹⁰**

बुद्धियुक्तपुरुष इस संसार में अच्छे बुरे कर्मों को त्याग देता है इसलिए कर्मयोग में जुट जाने की आवश्यकता है। समस्त कर्मों की कुशलता का नाम ही कर्म है। पुनः कहा गया है कि यज्ञ दान व तप को कभी त्यागना नहीं चाहिए क्योंकि इन कर्मों से विद्वान् जनों की शुद्धि होती है। अतः कहा गया है :-

यदादानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।।¹¹

जब हम श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के उनचालिसवें प्लोक पर ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि समबुद्धि का विवेचन सांख्य योग में तो किया ही गया है, पुनः इसका विवेचन कर्म योग के विषेष सन्दर्भ में भी हुआ है। इस समबुद्धि के कर्म योग के परिपेक्ष्य से कर्म बन्धन समाप्त हो जाता है, यह कहा गया है। इसकी पुष्टि निम्न प्लोक से की जाती है :-

**एषातेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।¹²**

समबुद्धि योग है। यह पहले सांख्य योग में ग्यारहवें से तीसरे प्लोक तक प्रस्तुत है। देह देही का ठीक ठीक विवेक होने पर समता में अपनी स्वतः सिद्ध स्थिति का अनुभव हो जाता है। कारण कि देह में राग रहने से ही विषमता आती है। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह समबुद्धि कर्म योग में कैसे प्राप्त होती है, इसका स्वरूप क्या है ? इसकी महिमा क्या है ? इन बातों के ज्ञान के लिए भगवान् ने इस बुद्धि को योग के सन्दर्भ में सुनने के लिए कहा है।

अर्जुन के मन में युद्ध करने से पाप लगने की सम्भावना थी।¹³ परन्तु भगवान् के मत में कर्मों में विषम बुद्धि होने से ही पाप लगता है। सम बुद्धि होने से पाप लगता ही नहीं।

⁹वही, 4. 17

¹⁰वही, 2. 50

¹¹वही, 8. 5

¹²श्रीमद्भगवद्गीता, 2 / 39

¹³श्रीमद्भगवद्गीता, 1 / 36

अतः भगवान अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि यदि तू समबुद्धि से युक्त रहेगा तो तुझे ये कर्म बन्धन कारक नहीं होंगे। सबसे पहले अर्जुन ने अपने कल्याण की बात पूछी थी, उस कल्याण के लिए भगवान ने मुख्य मुख्य साधनों का वर्णन किया है। पहले भगवान ने सांख्य योग का साधन बताकर कर्तव्य कर्म करने पर जोर दिया कि क्षत्रिय के लिए धर्म रूप युद्ध से बढ़कर के अन्य कोई साधन नहीं है।¹⁴ पुनः भगवान ने बताया है कि सम बुद्धि से युद्ध करने पर पाप नहीं लगता है।¹⁵ इसके आगे भगवान सम बुद्धि को कर्मयोग के परिप्रेक्ष्य में बताते हुए कहते हैं

कर्मयोगी लोक संग्रह के लिए सब कर्म करता है।¹⁶ लोक संग्रह के लिए कर्म करने से लोगों को उन मार्ग से हटा कर सन्मार्ग में लगाने के लिए कर्म करने से समता की प्राप्ति सुगमता से हो जाती है। समता की प्राप्ति होने से कर्म योगी कर्म बन्धन से सुगमता छूट जाता है। मनुष्य लोक में इस समबुद्धि-रूपी धर्म के आरम्भ का नाश नहीं होता। इसके अनुष्ठान का उल्टा फल भी नहीं होता और इसका थोड़ा सा भी अनुष्ठान महान भय से आरक्षा कर लेता है। इसकी पुष्टि निम्न प्लोक से हो जाती है :-

नेहाभिक्रमनाषोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायतो महतो भयात्।।¹⁷

समबुद्धि की महिमा चार प्रकार से बतायी गयी है - 1. इसके द्वारा कर्म बन्धन से मुक्ति मिल जाती है। 2. इसके उपक्रम का नाश नहीं होता है। 3. इसका उल्टा फल नहीं होता 4. इसका थोड़ा सा अनुष्ठान महाभय से रक्षा करने वाला होता है।

समबुद्धि का केवल आरम्भ हो जाय तो उस आरम्भ का नाश नहीं होता। मन में समता प्राप्त करने के लिए भी जो उत्कण्ठा लगी है, यहीं इस समता का आरम्भ होना है। इस आरम्भ का कभी अभाव नहीं होता, क्योंकि सत्यवस्तु की लालसा भी सत्य ही होती है।

सकामभावपूर्वक किये गये कर्मों में अगर मंत्र-उच्चारण यज्ञ-विधि आदि में कोई कमी रह जाय तो उसका उल्टा फल हो जाता है। जैसे कोई पुत्र प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ करता है तो उसमें विधि की त्रुटि हो जाने से पुत्र का होना तो दूर रहा, घर में किसी की मृत्यु हो जाती है अथवा विधि की कमी रहने से उल्टा फल न भी हो तो भी पुत्र पूर्ण अंगों के साथ नहीं उत्पन्न होता परन्तु जो मनुष्य इस समबुद्धि को अपने अनुष्ठान में लाने का प्रयत्न करता है उसके प्रयत्न के अनुष्ठान का कभी भी उल्टा फल नहीं होता कारण कि उसके अनुष्ठान में फल की इच्छा नहीं होती है। जब तक फलेच्छा रहती है तब तक

¹⁴वही, 2/31

¹⁵वही, 2/38

¹⁶वही, 3/20

¹⁷श्रीमद्भगवद्गीता, 2/40

समता नहीं आती और समता आने पर फलेच्छा नहीं रहती। अतः उसके अनुष्ठान का विपरीत फल होता ही नहीं, होना सम्भव ही नहीं है।

इस समबुद्धिरूप धर्म का थोड़ा सा भी अनुष्ठान हो जाय थोड़ी सी भी समता जीवन में आचरण में आ जाय तो यह जन्ममरण रूप महान भय से आरक्षा कर लेता है। जैसे सकाम कर्म फल देकर नष्ट हो जाता है। ऐसे यह समता धन सम्पत्ति आदि कोई फल देकर नष्ट नहीं होती। साधक के अन्तःकरण में अनुकूल प्रतिकूल वस्तु, व्यक्ति, घटना तथा परिस्थिति आदि के विषय में जितनी समता आ जाती है उतनी समता अटल हो जाती है। इस समता का किसी भी काल में नाश नहीं होता। योगभ्रष्ट की साधन अवस्था में जितनी समता आ जाती है, जितनी साधन सामग्री हो जाती है उसका स्वर्गादि ऊंचे लोकों में बहुत वर्षों तक सुख भोगने तक और मृत्युलोक में श्रीमानों के घर में भोग भोगने पर भी नाश नहीं होता।¹⁸ यह समता साधन सामग्री कभी किञ्चित मात्र भी नष्ट नहीं होती प्रत्युत सदा ज्यों की त्यों सुरक्षित रहती है। क्योंकि यह सत् है, सदा रहने वाली है।

समबुद्धि की प्राप्ति के विषय में व्यवसायात्मिका बुद्धि एक ही होती है। अव्यवसायी मनुष्यों की बुद्धियां अनन्त एवं बहुत षाखाओं वाली होती हैं। इस तथ्य की पुष्टि निम्न प्लोक से हो जाती है :-

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह, कुरुनन्दन।

बहुषाखा ह्यनन्ताष्व बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥¹⁹

कर्मयोगी साधक का लक्ष्य इस समता को प्राप्त करना रहता है। वह परमात्मा का स्वरूप है। उसकी प्राप्ति के लिए अन्तःकरण की समता साधन है, परन्तु इसमें संसार का राग बाधक है। उस राग को मिटाने का निष्चय व्यवसायात्मिका बुद्धि है। यह एक होती है क्योंकि इसमें सांसारिक वस्तु का त्याग होता है और यह एक ही होता है। अतः इन चीजों की कामनाएं अनेक होती हैं।

गीता में कर्मयोग और भक्तियोग के प्रकरण में व्यवसायात्मिका बुद्धि का वर्णन आया है। पर ज्ञान योग के प्रकरण में व्यवसायात्मिका बुद्धि का वर्णन नहीं आया है कारण कि ज्ञान योग में पहले स्वरूप का बोध होता है। फिर उसके परिणामस्वरूप बुद्धि स्वतः एक निष्चयवाली हो जाती है। कर्मयोग तथा भक्तियोग में पहले बुद्धि का निष्चय होता है पुनः स्वरूप का बोध होता है। अतः ज्ञानयोग में ज्ञान की मुक्तता है और कर्मयोग तथा भक्तियोग में निष्चय की मुक्तता है।

अव्यवसायात्मिका बुद्धिवाले वे होते हैं जिनके भीतर सकाम भाव होता है तथा जो भोग और संग्रह में आसक्त होते हैं। कामना के कारण ऐसे मनुष्यों की बुद्धियां अनन्त होती हैं। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि अव्यवसायिक मनुष्यों की बुद्धियां अनन्त क्यों होती हैं ? इस प्रश्न का उत्तर आगे के तीन प्लोकों में बताया गया है :-

¹⁸वही, 6/41, 44

¹⁹वही, 2/41

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविषेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् तयापहतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥²⁰

यहाँ उपर्युक्त प्लोकों के माध्यम से यह बताया गया है कि जो कामनाओं में तन्मय हो रहे हैं वे अविवेकी मनुष्य इस प्रकार की दिखावटी वाणी को कहा करते हैं, जो कि जन्मरूपी कर्मफल को देने वाली तथा भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए बहुत सी क्रियाओं का वर्णन करने वाली है। उस प्रकार की वाणी से जिसका अन्तःकरण हर लिया जाता है उनकी परमात्मा में निष्चयात्मकता बुद्धि नहीं होती।

लोग कामनाओं में इतने रमे रहते हैं कि वे कामना रूप ही बन जाते हैं। उनका यही भाव होता है कि कामना के बिना आदमी जी नहीं सकता। ऐसे भाव वाले पुरुष कामात्मनः कहे जाते हैं।

स्वर्ग में बढ़िया से बढ़िया दिव्य भोग मिलते हैं इसलिए उनके लक्ष्य में स्वर्ग ही सर्वश्रेष्ठ होता है। और वे उसकी प्राप्ति में ही रात दिन लगे रहते हैं। वे वेदों में कहे हुए सकाम कर्मों में प्रीति रखने वाले हैं। उनकी दृष्टि में भोगों के सिवाय परमात्मा, तत्त्वज्ञान, मुक्ति तथा भगवत प्रेम इत्यादि कोई चीज है ही नहीं। दिखाऊ, षोभायुक्त वाणी, भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए जिन सकाम अनुष्ठानों का वर्णन करती है, उनमें क्रियाओं की बहुलता रहती है।²¹

षड्, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच विषय शरीर का आराम, मान और नाम की बड़ाई – इन्हें योग कहा जाता है। इसके लिए पदार्थ को ऐश्वर्य कहते हैं।

जो भोग और ऐश्वर्य में लगे रहते हैं, वे आसुरी सम्पत्ति वाले होते हैं। मनुष्य जन्म का असली ध्येय है उस परमात्मा को ही प्राप्त करना जिसके लिए मनुष्य शरीर मिला है, ऐसी व्यवसायात्मिका बुद्धि उन लोगों में नहीं होती है।

परम दयालु प्रभु ने कृपा करके इस मनुष्य शरीर में एक ऐसी विलक्षण विवेक शक्ति दी है जिससे वह सुख दुख से ऊंचा उठ जाये। परन्तु पूर्व प्रदत्त इस विवेक-शक्ति का अनादर करके नाशवान हो और संग्रह में आसक्त हो जाना पशु बुद्धि है। जो उसको भोग सामग्री मान लेते हैं, उनकी परमात्मा में व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होती है। श्रीमद्भगवद्गीता में निष्काम भाव को पुष्ट करने की चेष्टा की गई है। इसलिए पीछे के तीन प्लोकों में सकाम भाव वालों का वर्णन करके आगे के प्लोक में निष्काम होने की प्रेरणा दी गई है। अतः कहा गया है :-

²⁰वही, 2/42, 43, 44

²¹श्रीमद्भगवद्गीता, 18/24

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।²²

उपर्युक्त प्लोक के माध्यम से बताया गया है कि वेद तीनों गुणों के कार्यों का वर्णन करते हैं। लेकिन अर्जुन के लिए आवश्यक है कि वह तीनों गुणों से रहित हो जाय तथा नित्यवस्तु में स्थित होकर योगक्षेम की चाहना भी न करे और परमात्मा—परायण हो जाय।

यहाँ वेदों के उस अंश से तात्पर्य है जिसमें तीनों गुणों का एवं उनके कार्यों स्वर्गादि भूमियों का वर्णन है। यहाँ वेदों की निन्दा नहीं है अपितु निष्काम भाव की महिमा को बताया गया है। यहाँ निष्काम भाव की महिमा बताने के लिए ही वेदों के सकामभाव का वर्णन आया है। वेद केवल तीनों गुणों के संसार का ही वर्णन करने वाले नहीं है बल्कि वेदों में परमात्मा एवं उनकी प्राप्ति के साधनों का भी वर्णन हुआ है।

यहाँ तीनों गुणों के कार्य—रूप संसार की इच्छा का त्याग करके असंसारी बन करके ऊपर उठ जाने की प्रेरणा दी गई है। संसार से ऊंचा उठने के लिए राग, द्वेष आदि द्वन्द्वों से रहित होने की बड़ी भारी आवश्यकता है। क्योंकि वे मनुष्य के षत्रु हैं।²³

यहाँ निर्द्वन्द्व होने की बात कही गयी है क्योंकि द्वन्द्वों से मोह होता है। संसार में फसावट होती है।²⁴ जब साधक निर्द्वन्द्व होता है तभी वह दृढ़ होकर भजन कर सकता है।²⁴ निर्द्वन्द्व होने से साधक सुखपूर्वक संसार—बन्धन से मुक्त हो जाता है। निर्द्वन्द्व होने से मूढ़ता चली जाती है। साधक कर्म करता हुआ भी बंधता नहीं है अर्थात् साधक की साधना निर्द्वन्द्व होने से दृढ़ हो जाती है। इसलिए निर्द्वन्द्व होने की प्रेरणा दी गयी है। पुनः अगर संसार में किसी भी वस्तु, व्यक्ति आदि में राग होगा तो दूसरी वस्तु व्यक्ति आदि में द्वेष हो जाएगा यह नियम है। ऐसा होने पर भगवान की उपेक्षा हो जायेगी। यह भी एक प्रकार का द्वेष है। परन्तु जब साधक का भगवान में प्रेम हो जायेगा तब संसार से द्वेष नहीं होगा बल्कि संसार से स्वभाविक उपरति हो जाएगी। ऐसा होने पर पहले अवस्था में साधक का प्रतिकूलता में द्वेष नहीं होगा किन्तु उसकी उपेक्षा होगी। उपेक्षा के बाद उदासीनता होगी और उदासीनता के बाद उपरति होगी। उपरति में राग—द्वेष सर्वथा मिट जाते हैं।

द्वन्द्वों से रहित होने का उपाय है कि जो नित्य निरन्तर रहने वाला सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा है उसी में स्थित रहा जाय। योग एवं क्षेम की भी इच्छा न रखी जाय क्योंकि जो परमात्मा के परायण होते हैं उनके योगक्षेम का वहन स्वयं भगवान करते हैं।²⁵

अब प्रश्न उठता है कि तीनों गुणों से रहित निर्द्वन्द्व आदि हो जाने से क्या होता है ? इस प्रश्न का समाधान अगले प्लोक में निम्न प्रकार से किया गया है :-

²²वही, 2 / 45

²³वही, 3 / 34

²⁴वही, 7 / 27

²⁵वही, 7 / 28

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥²⁶

उपर्युक्त कथन से बतलाया गया है कि सब तरफ से परिपूर्ण महान जलाशय के प्राप्त होने पर छोटे जलाशय में मनुष्य का जितना प्रयोजन रहता है, वेदों और शास्त्रों को तत्त्व से जानने वाले ब्रह्म-ज्ञानी का सम्पूर्ण वेदों में उतना ही प्रयोजन रहता है।

जल से सर्वथा परिपूर्ण स्वच्छ निर्मल महान सरोवर के प्राप्त होने पर मनुष्य को छोटे छोटे जलाशयों की आवश्यकता नहीं रहती है। ऐसे ही जो महापुरुष परमात्म तत्त्व को प्राप्त हो गये हैं उनके लिए वेदों में कहे हुए यज्ञ, दान, तप, तीर्थ व्रत आदि जितने भी पुण्य कार्य हैं, उन सब से कोई मतलब नहीं रहता।

श्रीमद्भगवद्गीता में योग का वर्गीकरण विभिन्न प्रकारों और विभिन्न दृष्टियों से किया गया है। इनमें सभी से अधिक महत्त्वपूर्ण है कर्मयोग का विभाजन जिसे सकाम कर्मयोग एवं निष्काम कर्मयोग के रूप में किया गया है।

पुनः यह भी कहा गया है कि नित्य योग कर अनुभूति कर्मों के द्वारा की जाय तो इसकी संज्ञा कर्मयोग की होती है। पुनः योग का विवेचन विवेक विचार के द्वारा की जाय तो उसे ज्ञान योग के रूप में जाना जाता है। पुनः योग की अनुभूति जब भक्ति के द्वारा की जाती है तो वही भक्ति योग कहलाता है। जब योग का विचार लय चिन्तन के द्वारा की जाय तो लय योग कहलाता है। आगे यह बतलाया गया है कि प्राणायाम के द्वारा ही योग की क्रिया का सम्पादन किया जाता है, जिसकी संज्ञा हठ योग है और जब यम नियमादि आठ अंगों के द्वारा योग पर विचार किया जाता है तो उसकी संज्ञा अष्टांग योग बतलायी गयी है। इस प्रकार सब मिलाकर योग के भेद गीता के परिप्रेक्ष्य में सात प्रकार के हो जाते हैं। इन भेदों का प्रस्तुतीकरण निम्न रूप में किया जाना अपेक्षित है।

सर्वप्रथम कर्म का विभाजन सकाम कर्म एवं निष्काम कर्म के रूप में किया गया है। सकाम कर्म का अर्थ है— किसी कामना के साथ किया गया कर्म। संसार के सारे कर्म कामना के साथ किये जाते हैं। कामना के साथ किये गये कार्यों में द्वन्द्वों की बहुलता होती है। इच्छा और द्वेष से उत्पन्न होने वाले द्वन्द्वों एवं मोह से मोहित सम्पूर्ण प्राणी संसार में मूढ़ता को प्राप्त होते हैं। इस तथ्य की पुष्टि श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 7 के 27 वें प्लोक से हो जाती है :—

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥²⁷

इच्छा और द्वेष से द्वन्द्व मोह पैदा होता है जिससे मोहित होकर प्राणी भगवान से बिल्कुल विमुक्त हो जाते हैं और विमुख हो जाने से बार बार संसार में जन्म लेते हैं। अतः मनुष्य को संसार से विमुख होकर केवल भगवान में लगने की आवश्यकता है। भगवान में न लगने

²⁶वही, 9 / 22

²⁷वही, 2 / 46

में बड़ी बाधा क्या है ? यह मनुष्य-षरीर विवेक-प्रधान है। अतः मनुष्य की प्रवृत्ति और निवृत्ति पशु-पक्षियों की तरह न होकर विवेक के अनुसार होनी चाहिए। परन्तु मनुष्य अपने विवेक को महत्व न देकर राग और द्वेष को लेकर ही प्रवृत्ति और निवृत्ति करता है जिससे उसका पतन होता है। मनुष्य की दो मनोवृत्तियां हैं – 1. एक तरफ लगाना और 2. एक तरफ से हटाना। उन दोनों वृत्तियों को जब मनुष्य केवल संसार में लगा देता है तो वही प्रेम और वैराग्य क्रमशः राग और द्वेष का रूप धारण कर लेती हैं, जिससे मनुष्य संसार में उलझ जाता है। मनुष्य के मन में राग के कारण यह बात गहरी बैठी रहती है कि मुझे सांसारिक अनुकूलता को प्राप्त करना है और प्रतिकूलता को हटाना है। इस प्रकार वह हृदय में दृढ़ता से राग और द्वेष को पकड़े रहता है। इससे द्वन्द्व की समाप्ति नहीं होती है।

द्वन्द्वों में भी अगर मनुष्य का राग एक ही विषय में हो जाय तो भी ठीक है। परन्तु संसार में राग, द्वेष, काम, क्रोध ठीक वे ठीक अनुकूल प्रतिकूल आदि द्वन्द्व रहने से मूढ़ता दृढ़ होती है और मनुष्य का पतन हो जाता है। संसार का सम्बन्ध द्वन्द्व से दृढ़ होता है। इसलिए भगवान ने दूसरे अध्याय में निर्द्वन्द्व²⁸ पद से द्वन्द्व रहित होने की आज्ञा दी है। दुख सुख आदि द्वन्द्वों से रहित होकर भक्त जन अविनाशी पद को प्राप्त होते हैं। भगवान ने द्वन्द्व को मनुष्य का खास षत्रु बताया है।

षास्त्रों की दृष्टि से अज्ञान ही जन्म मरण का कारण है परन्तु संत वाणी के अनुसार जन्म मरण का खास कारण राग के कारण प्राप्त परिस्थिति का दुरुपयोग है।

प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करने से जन्म मरण मिट जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कामना के साथ किये गये कर्म द्वन्द्वों से परिपूर्ण होने के कारण मानव को अधोगति की ओर ले जाते हैं। लेकिन साधक जब तक निष्काम कर्म करने की योग्यता से समन्वित नहीं होता तब तक सकाम कर्म करना आवश्यक ही है, क्योंकि सकाम कर्म के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेने के अनन्तर साधक को गीता के परिपेक्ष्य में निष्काम कर्म की ओर बढ़ने एवं जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति में सहयोग नहीं मिल सकता है। अतः निष्काम कर्मयोग की प्राप्ति के पूर्व कामना के साथ किये गये कर्म के क्या फल होते हैं, इसे समझना बहुत आवश्यक है। सकाम कर्म की अवधारणा को स्पष्टीकरण के उपरान्त निष्काम कर्मयोग की अवधारणा को स्पष्ट करने की आवश्यकता होती है, जिसे निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

गीता में बतलाया गया है कि साधक का अधिकार मात्र कर्तव्य करने में है, उसके फलों में नहीं। द्वितीयतः यह भी निर्देश दिया गया है कि साधक को कर्मफल का हेतु भी नहीं बनना चाहिए। तृतीयतः यह भी निर्देश दिया गया है कि साधक को अकर्मण्य भी नहीं होना चाहिए। मानव को कर्मयोनि प्राप्त है। यह कहा गया है कि नये कर्म का सम्पादन मानव के अतिरिक्त कोई अन्य कर्म नहीं कर सकता। यही कारण है कि पशु, पक्षी, वृक्ष, लता आदि नये कर्म का सम्पादन नहीं करते। यह बात सही है कि देवता इत्यादि नये कर्म करने में समर्थ हैं परन्तु वे पूर्व में किये गये यज्ञ, दान आदि शुभ कर्मों के फल भोगने के लिए हैं। वे मनुष्यों को कर्म करने की सामग्री दे सकते हैं परन्तु स्वयं नया कर्म नहीं कर सकते। इसके

²⁸वही, 7 / 27

विपरीत नारकीय जीव अपने दुष्कर्मों का फल भोगते हैं परन्तु नये कर्म का सम्पादन नहीं कर सकते। इन सबों से स्पष्ट है कि नया कर्म करने का अधिकार एक मात्र मनुष्य को है। भगवान ने सेवा—रूप नया कर्म करके केवल अपना उद्धार करने के लिए ही यह अन्तिम मनुष्य जन्म दिया है। अगर यह कर्मों को अपने लिए करेगा बन्धन में पड़ जाएगा और कर्मों को न करके आलस्य प्रमाद में पड़ा रहेगा तो बार बार जन्म ग्रहण करता रहेगा। इसलिए भगवान ने कहा है कि तेरा केवल सेवा—रूप कर्तव्य कर्म करने में ही अधिकार है।

IUnHkZ xzUFk :-

- [1]. Franklin Edgerton, *The beginning of Indian Philosophy* (Cambridge, Mass.: Harvard University Press, 1965).
- [2]. “Karl H. Potter, “The Naturalistic Principle of Karma,” *Philosophy : East and West* Volume XIV, Number 1, April 1964.
- [3]. Eliot Deutsch, *Advaita Vedanta, A Philosophical Reconstruction* (Honolulu : East and West Center Press, 1967).
- [4]. हरेन्द्र नाथ दत्त – वेदान्त रहस्य.
- [5]. कविराज – अद्वैत वेदान्त
- [6]. बलदेव उपाध्याय – आचार्य सायण और माघव.
- [7]. S. Radhakrisnan - *History of Indian Philosophy*, Vol, I & II.
- [8]. Hiriyana - *Out Lines of Indian Philosophy*.